GLOBALLY INDEXED
IMPACT FACTOR SJIF 2016
6.177

SRJIS

Online ISSN -2278-8808
Printed ISSN- 2319-4766

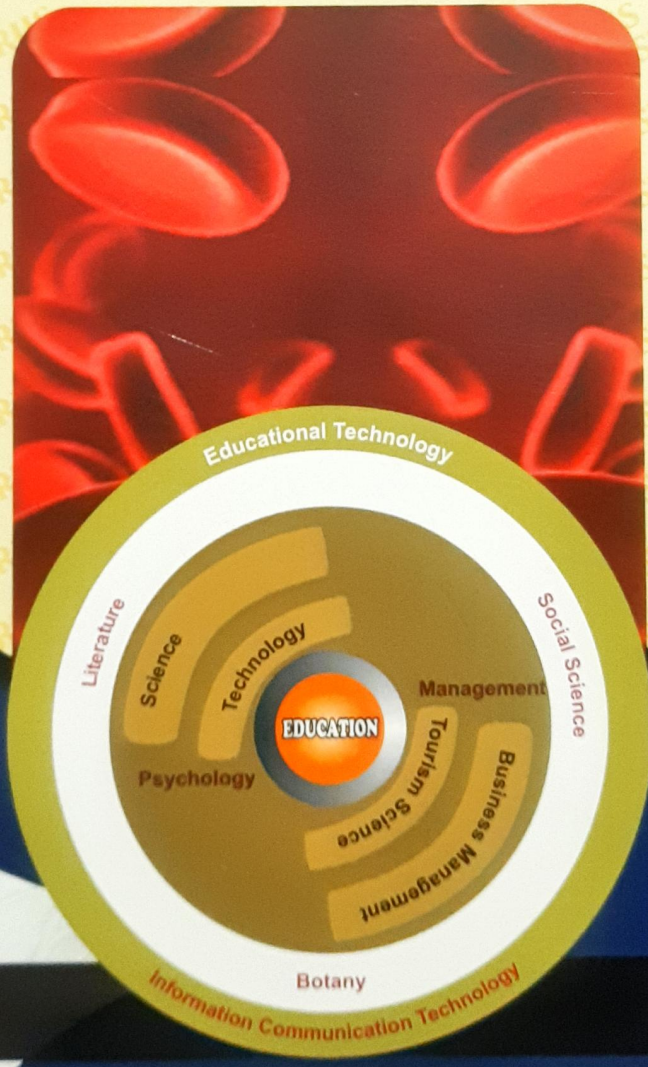

An International Peer Reviewed

Referred Quarterly

SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL FOR INTERDISCIPLINARY STUDIES

SPECIAL ISSUE APRIL-JUNE, 2017. VOL. 6, ISSUE -30

EDITOR IN CHIEF : YASHPAL D. NETRAGAONKAR, Ph.D.

An International Peer reviewed

Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies (SRJIS) is provides the unique platform established by well-known academicians, research based community to create awareness among the youngsters, readers and contributors. SRJIS motivate to exchange innovations and ideas and Educational Practices Globally.

SRJIS Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies is an International Peer Reviewed Journal published online Bimonthly as well as printed Quarterly with an aim to provide a platform for researchers, practitioners, academicians and professional from diverse areas of all disciplines to bring out innovative research ideas & practices. Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies is dedicated to publish high quality research articles on all aspects of education related to, Arts, Commerce, Science, Educational Technology, Information Communication and Technology, Education, Physical Education, Educational Psychology, English, Linguistics, Engineering, Management, Economics, Dramatics, Business Marketing, Archaeology, Public Administration, Political Science, Social Science, and related all disciplines. Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies invites high quality research papers from all parts of the globe providing meaningful insights to research scholars.

Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies (SRJIS) is a Peer Reviewed, & Refereed International Journal published Quarterly a year.

The Journal welcomes the submission of research papers, conceptual articles, manuscripts, project reports; meet the general criteria of significance and academic excellence.

Printed ISSN 2319-4766

Online ISSN 2278-8808

S. No. 5+4/5+4,TCG's, SAI DATTA NIWAS, D-WING, F. NO-104,Dattanagar,
Near Telco Colony, Ambegaon (BK), Pune.
Maharashtra. 411046. India. Website: www.srjis.com, Email : editor@srjis.com

₹ 750/-

SJIF 2016 = 6.177

Online ISSN 2278-8808 **Printed ISSN 2319-4766**

An International, Peer Reviewed, & Referred Quarterly

Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

APRIL-JUNE, 2017, VOL-6, ISSUE-30

अनुक्रमणिका

अ. क्र.	प्राध्यापकाचे नाव व पेपरचे शीर्षक	पान. क्र.
1	विवेकी राय के 'नमामि ग्रामम्' उपन्यास में ग्राम–विमश्ज्ञ *डॉ. हरिश्चन्द्र शाही*	1-10
2	समकालीन हिंदी कहानियों में ग्राम विमर्श (खेतिहर और दिहाड़ी मजदूरों के विशेष संदर्भ में) *डॉ. अशोक धुलधुले*	11-16
3	'मुर्दहिया' का ग्रामिण जीवन : एक यथार्थ *डॉ. सुनिता पी. बन्सोड*	17-22
4	विवेकी राय के उपन्यासों में चित्रित ग्राम–संस्कृति बनाम नगर सभ्यता–विमर्श *डॉ. दीपक विनायकराव पवार*	23-29
5	ग्रामीण परिवेश एवं स्वस्थ प्रकृति के चितेरे *डॉ. कान्ता एम. भाला राठी*	30-36
6	समकालीनहिंदी कविता में ग्राम विमर्श के संदर्भ (मलखान सिंह के ' सूनो ब्राह्मण 'कविता संग्रह के विशेष संदर्भ में) *प्रा.गोरख निळोबा बनसोडे*	37-41
7	असग़र वजाहत के उपन्यासों में महानगरीय जीवन *परविन मुल्ला*	42-44

विवेकी राय के उपन्यासों में चित्रित ग्राम–संस्कृति बनाम नगर सभ्यता–विमर्श

डॉ. दीपक विनायकराव पवार

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, दिगम्बर राव बिन्दु महाविद्यालय, भोकर, जिला – नांदेड़ (महाराष्ट्र)

आधुनिकता की चकाचौंध में नगरीय सभ्यता तेजी से गाँवों में अपना पाँव पसारती जा रही है, जिससे गाँव का मूल स्वरूप दिन पर दिन विनष्ट हो रहा है। वर्तमान परिवेश में नगर की सारी बुराईयाँ गाँवों में घुसकर ग्रामीणों के सहज मन को विद्ध कर अपना विषाक्त प्रभाव फैलाने में सफल हो रही है। नगर सभ्यता के दुर्निवार आक्रमण ने आज गाँव के सामाजिक ढाँचे को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया है। सर्वत्र एकाकीपन और अजनबीपन का भाव दीख रहा है। नागर लोगों की तरह ही ग्रामीणों में भी व्यक्तिवाद एवं दूसरों से कटकर जीने की प्रवृत्ति दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। सामाजिक सहकार, भाईचारा, मेल–मुहब्बत, आपसी सौहार्द्र, सुख–दुख में सहभागिता का भाव, संस्कृति के प्रति आस्था, पुराने मूल्यों के प्रति लगाव, सत्य, ईमानदारी, दयाभाव, परोपकार, 'अतिथि देवोभव' की संस्कृति आदि मूल्य ह्रासोन्मुख हैं। इनकी जगह पर विघटन, बिखराव, लड़ाई–झगड़ा, चोरी, हत्या, डकैती, फैशनपरस्ती, कृत्रिम आचरण, हिंसा, कामचोरी आदि का प्रभाव बढ़ रहा है।

संस्कृति बनाम सभ्यता की इस लड़ाई में सांस्कृतिक दृष्टि से गाँव की उर्वर भूमि दिनों–दिन बंजर पड़ती जा रही है। गाँव की दुखती रग–रग से वाकिफ डॉ विवेकी राय का संवेदनशील अंतर्मन गाँव के इस सर्वतोन्मुखी पतन को देखकर उद्विग्न है। उनके सभी उपन्यासों में प्रायः यह तथ्य विवेचित हुआ है कि तथाकथित आजादी मिलने के इतने लम्बे समय बाद हुए तमाम परिवर्तनों एवं लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के बावजूद गाँव मूलतः पहले की अपेक्षा और अधिक बदरंग एवं कुरूप हुआ है। आज ईर्ष्या–द्वेष एवं कलह का सर्वत्र राज है। मूल्यों का क्षरण काफी तेजी से हुआ है, फलतः आज कोई भी भद्रजन गाँवों से दूर जाना चाहता है। स्वार्थ में अंधे लोगों की हिंसक प्रवृत्ति और अधकचरी राजनीति में तप्त गाँवों से सभा, बटोर और मिलजुलकर काम करने की प्रवृत्ति स्वराज्य के बाद नये ग्राम–विकास के साथ जो विदा होना शुरू हुई वह पूर्णतः विदा होने को है। जिससे बुद्धजनीवी वर्ग का गाँव से लगातार पलायन हो रहा है और गाँव दिन–पर–दिन उजड़ते जा रहे हैं। इस वेदना को ग्राम–पीड़ा के सहज–सचेतक डॉ० विवेकी राय ने गहरे अवसाद के साथ अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है।

प्रख्यात कथाकार विवेकी राय ने गाँव की परम्परागत सामाजिक–संरचना के ध्वस्त होने के पीछे सबसे प्रमुख कारक नगरीय सभ्यता को माना है।'' उनका मानना है कि ''परम्परागत संस्कृति ने जोरदार धक्का दिया है, जिससे गाँव का मूल स्वरूप आज पूर्णतः तिरोहित हुआ है।''[१] नगरीय प्रभाव दो रूपों में खास तौर पर अग्रसर हुआ है। एक तो यह नगर की कृत्रिमता, फैशन, व्यावसायिकता और मशीनीकरण को लेकर गाँव में धँसा है और गाँव के सहज और आत्मीय वातावरण को अस्त–व्यस्त करने में सफल रहा है। इस प्रवेश में शिक्षा ने भी अपना योग दिया है। यह प्रभाव ऊपर अधिक दिखायी देता है। दूसरे तरह का प्रभाव अंतरवर्ती है। स्वार्थपरता और वैयक्तिकता के किटाणु नगर से गाँव में आये और इन्होंने गाँव के मर्म पर प्रहार किया। एक गाँव कई गाँवों में बँट गया। श्रद्धा, सहयोग, परोपकार, सेवा आदि मूल्य संकट में पड़ गये। लेखक की दृष्टि में ''आधुनिकता में एक सबसे बड़ा दोष यह है कि व्यक्ति आधुनिक होने से आधुनिक कहलाने के चक्कर में अधिक पड़ जाता है।'' [२]

गाँवों में नगर के कृत्रिम जीवन, तड़क भड़क एवं यांत्रिकता के प्रवेश को विवेकी राय ने सर्वत्र चिंता की दृष्टि से देखा है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे गाँवों को पिछड़ा हुआ या आधुनिक सुख–सुविधाओं से वंचित देखना चाहते हैं, बल्कि वे कथित आधुनिकता के हावी होते उन खतरों से उद्विग्न और बेचैन होते हैं, जिनसे गाँव का मूल स्वरूप आहत होता है तथा गाँव के कुटीर, धंधे आदि प्रभावित होते हैं, गाँव का मर्म आहत होता है। उनका यह प्रयास कमोवेश सभी उपन्यासों में दिखाई देता है, किन्तु 'बबूल' एवं 'नमानि ग्रामम्' में यह लेखकीय चेतना कुछ अधिक ही मुखर हुई है।

इस संदर्भ में उनके प्रथम उपन्यास 'बबूल' का उदाहरण द्रष्टव्य है –'' बक्स नहीं यह शहर है। महेसवा के हाथों में लटका गाँव की झोपड़ी में चला आ रहा है।..... शहर गाँव में जा रहा है। एकदम हल्का बनकर, छोटा बनकर, अप्रत्यक्ष करों की जगह, वहाँ जाकर यह बक्स मूँज की बनी झाँपी–मोन्ही पर उसी प्रकार धौंस जमाएगा, जिस प्रकार थानेदार ग्रामीणों पर और यह बक्स काठ के बने तेल–पुते संदूकों के बीच उसी प्रकार साहबी रोब में तनकर बैठेगा, जिस प्रकार गँवारों के बीच कोट–पतलून पहने पंचायत इंस्पेक्टर साहब। छोटा है तो क्या? रूप– रंग तो देखो? काट–छाँट तो देखो? कलर तो पहचानो। यह नई रोशनी देगा, नई सभ्यता सिखायेगा और नया पाठ पढ़ायेगा। माना कि लोहा नहीं टीन है, तो इससे क्या ? झनझनायेगा तो? [३] इस उद्धरण में 'झाँपी–मोन्ही' और 'काठ के बने तेल पुते संदूकों' की नियति के बहाने लेखक ने ग्रामीण हस्तकला एवं कुटीर उद्योग की हो रही क्षति को स्पष्ट किया है। यही नहीं, नगरीय प्रभाव के चलते आज गाँवों से नाई, बारी, धोबी, कुम्हार, लोहार आदि या तो पलायन कर चुके हैं या फिर मजबूर

होकर अपने परम्परागत पेशे को बदल चुके हैं। फलत: गृहस्थ और पवनी, जजमान और पुरोहित का जो अन्योन्याश्रित संबंध था, आज वह इस प्रभाव से पूर्णरूपेण समाप्त हो चुका है।

गाँवों में आज संयुक्त परिवार कहीं नहीं दीखता। नगरीय सभ्यता के धक्के से परम्परागत सामाजिक ढाँचा ध्वस्त हो चुका है। सर्वत्र एकाकीपन और अजनबीबोध का भाव दीखता है, आज गाँव बुरी तरह समाप्ति के कगार पर है। वह चीख रहा है, चिल्ला रहा है – मुझे बचाओ, मुझे बचाओ, लेकिन हम उसके करूण–क्रन्दन को, अन्तरात्मा की मर्मान्तक पीड़ा को, अंतर्व्यथा को या तो सुन नहीं पा रहे हैं, या सुनकर भी अनसुना कर दे रहे हैं। उसकी निजता छिनती जा रही है। उसकी अपनी पहचान लुप्त होती जा रही हैं, आज दोन, रहट पुर, मोट, पनचक्की कहीं नहीं दिखाई दे रहे, बल्कि उनकी जगह आधुनिक मशीनों ने ले ली है। दँवरी, ओसावन, कूटने–पीसने आदि के सारे परम्परागत उपकरण, जोतने–बाने, काटने, तेल पेरने आदि का कोई परम्परागत रूप नहीं दिखाई देता, अपितु थ्रेसर, चक्की, हॉलर, ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, एक्सपेलर, क्रासर आदि का राज हैं । निस्संदेह आधुनिकता की दौड़ में गाँवों में कच्चे मकान पक्के हो गये, नंगे पाँव वाले जूते पहनने लगे, सन्नाटे को टी० वी० के सुरीले गीत झनझनाने लगे, लेकिन लोगों के भीतर जो आदमी था वह गायब हो गया। मनहूसी, तनाव और अकेलेपन की कुत्सित स्वार्थपरता में सभी लोग जीने को मजबूर हैं।

संस्कृति बनाम सभ्यता की लड़ाई में गाँव, न तो गाँव रह गया और न पूरी तरह नगर ही बन पाया। फलत: त्योहार–समारोह सब पर इस सभ्यता का व्यापक असर पड़ा है।'' आज गाँव–गाँव में अखबार, रेडियो, टी० वी०, फोन, मोबाइल, सड़क, बिजली आदि, अर्थात सभ्यता के प्रतीक, द्रुत गति से पाँव पसारते जा रहे हैं। हर एक–दो कि० मी० पर दो–चार गाँवों को केन्द्र बनाकर 'बाजार' लग रहे हैं, चट्टियाँ विकसित हो रही हैं जहाँ चाय–पान की दुकानों पर गाँव की कई–कई पीढ़ियों को एक साथ, आसानी से गप्प लड़ाते, चाय पीते, गरमागरम राजनीतिक बहस करते, देखा जा सकता है। 'अपराध', अराजकता, स्मगलिंग, आवारागर्दी और राजनीतिबाजी के अड्डे के रूप में ये चट्टियाँ परिवर्तित होती जा रही हैं।'' [४] 'मंगल भवन' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र विक्रम मास्टर सोचता है– '' ..... अरे, मेरे देखते–देखते ही कितना बदला गया गाँव और उसके समस्त बदले हुए स्वरूप को समझना भी तो कितना कठिन है। धन के साथ गरीबी बढ़ी, सुविधा के साथ असुविधा बढ़ी, शिक्षा के साथ अशिक्षा बढ़ी, रोजगार के साथ बेकारी बढ़ी और अधिकारों के साथ अशांति बढ़ी और इन सारे बदलावों का एक प्रतीक क्या यह चट्टी नहीं है? [५] इस प्रकार गाँवों में अब एक चट्टी–संस्कृति विकसित होने लगी है।

आज गाँव का कोई भी आदमी किसी के दरवाजे पर नहीं जाना चाहता । वह बड़े गर्व के साथ घोषणा करता है कि मैं सिर्फ अपने काम से मतलब रखता हूँ, गाने और तमाशा आदि में

आप हमें कहीं नही पाएँगे । आज गाँवों के लोग भी नगरी 'वैयक्तिकवाद' का जीवन जी रहे हैं। किसी के सुख–दुख में हमारी कोई सहभागिता नहीं, कोई प्रेम नहीं, कोई लगाव नहीं, 'गुल्लर का किरौना' बन शहरी लोगों की तरह से अपनी जिन्दगी काट देते हैं। पहले गाँवों में रामायण, गीता के पाठ होते थे, आज अखवार, पत्रिका, भद्दा साहित्य पढ़ा जा रहा है। पहले चार लोगों के जुटने पर भगवद् चर्चा होती थी, आज राजनीति की चर्चा होती है। पहले दुर्गापूजा और मुहर्रम के अवसर पर सामुहिक कलाबाजियाँ दिखाते थे आज विद्वेष और वैमनष्य की लाठियाँ भाँजते हैं। पहले कोई एक नेतृत्वकर्ता होता था, जिसकीं बातें गाँव में सर्वमान्य होती थीं, आज सभी अगुवा हैं। पहले स्त्रियों और पुरूषों के पोशाक में भारतीय संस्कृति झलकती है, अखाड़ों में खेल के मैदानों में स्वस्थ्य एवं मनोरंजक प्रतिस्पर्द्धा के दर्शन होते थे, आज विकास की अंधी दौड़ में विकृत प्रतिद्वंद्विता बढ़ती जा रही हैं। सम्पूर्ण ग्रामीण जनमानस में आज शहरी उपयोगितावादी दृष्टि अपनी जड़े गहरी जमाती जा रही है। शहरी बाजारवाद ने हमारे ग्रामीण नैतिक मूल्यों एवं विचारों को खोखला कर दिया है। हर उत्सवों में उल्लास की जगह दिखावा, स्वाभविकता की जगह कृत्रिमता, सामंजस्य की जगह वैमनस्य और संधटन की जगह विघटन का संकुचित रूप लक्षित होता है। वस्तुत: आधुनिक नगरीय सभ्यता ने गाँवों की समष्टिगत चेतना को व्यष्टिगत बनाने में कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी है, क्योंकि व्यक्तिगत बनाकर ही वह अपनी उपभोक्तावादी संस्कृति को गाँवों पर लाद सकती है और अपना हित साध सकती है। विकेकी राय 'नमानि ग्रामम्' उपन्यास कहते हैं – '' चूँकि अच्छाई ग्रहण करना काफी कठिन होता है। अत: गाँव के लोगों ने शहर में जाकर वहाँ की अच्छाइयों को तो ग्रहण करने में कामयाबी नहीं पायी, हाँ उसकी बुराइयों को जरूर ग्रहण किया, फलत: वह अवमूल्यन की ओर जल्दी अग्रसर हुआ। नैतिक और चारित्रिक गिरावट की पराकष्ठा यह है कि बहू–बेटियों पर आँख उठाना एक शाबाशी हो गयी है।'' [६] गाँवों में बढ़ती फैशनपरस्ती और कृत्रिमता को व्यक्त करते हुए रचनाकार व्यग्र होकर कहता है – ''ऐसे जीव भी अब गाँवों में पैदा होने लगे है जो दिन भर कपड़े पर सिर्फ साबुन, नील, रानीपाल और लोहा रगड़ते हैं तथा शाम को रंग झाड़कर निकलते हैं, जैसे लखनऊ बना रखा है, उन्होंने अपने गाँवों को''[७] ' अतिथि देवो भव' का पुराना संस्कार अब समाप्त हो चुका है। आपके पास यदि पैसा है तो सस्ता–महँगा भोजन शहर में तो मिल सकता है, लेकिन गाँव में नहीं। अपरिचित आदमी को अपने दरवाजे पर रात भर रोकना तो दूर आज दिन में भी क्षणभर कोई शरण नहीं देता। ऐसे कुत्सित परिवेश में आदर–सत्कार की कल्पना करना ही बेकार है। जहाँ पहले किसी आगन्तुक के आने पर दाना और नमक–मिर्च या गुड़ रखकर डाली में पानी पीने के लिए दिया जाता था। आज वह परम्परा लुप्त होती जा रही है या कहीं–कहीं नमकीन बिस्कुट और चाय की आधुनिकता के लिबास में बेशर्मी की सजावट है। आज

उत्सवों, तीज–त्योहारों के मर्यादित एवं संस्कारित गीत 'रामायण–गीता' की तरह ही उपेक्षित कर दिये गये।

विवेकी राय ने अपने उपन्यास 'नमामि ग्रामम्' उपन्यास में ग्रामीण संस्कृति के क्षरण के हर पहलुओं का सूक्ष्म अवलोकन किया है और स्पष्ट किया है कि अन्धानुकरण की प्रवृति ने हमारी मौलिकता को, मूल संरचना को ही विकृत कर दिया है। पहले शादी के बाद गाँवों में विदाई के समय 'कन्या' को उसके हाथ से बनाये गये, या घर के अन्य सदस्यों द्वारा तैयार किये गये सामान– दौरियाँ, झाँपियाँ, बक्स, कोन्ही, खिलौने आदि दिये जाते थे, लेकिन आज कन्या, पितृगृह से विदा होती है तो उसकी विदाई में नामी–गिरामी कम्पनी के सूटकेस, पंखा, टी० वी० फ्रिज, टू–इन–वन, स्कूटर, कार, रेडीमेड वस्तुएँ और इसी भाँति तड़कीले–भड़कीले सामान दिये जाते हैं।'' [८] इस प्रकार आज जहाँ हम अपनी हस्तकाल एवं गृहकला का आश्रय छोड़ बनावटी जीवन की ओर तेजी से अग्रसर हो रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ अपनी स्मृतियों से भी आत्मीयता को नष्ट करते जा रहे हैं। अपने या अपने–अपनों के हाथों बने सामान सिर्फ वस्तु नहीं हैं, बल्कि वह हमारी आत्मीयता को जीवंत बनाये रखने के आधार भी हैं। परन्तु आधुनिकता की ललक में हम या तो आत्मीयता खो बैठे हैं , या फिर हमारी संवेदना क्षीण हो रही है। रचनाकार ने आगे स्पष्ट किया है कि पहले गाँवों में जहाँ किसी व्यक्तिगत क्षति की सामुहिक पूर्ति की चर्चा होती थी आज वहाँ राजनीति होती है, भाषणबाजी होती है, अर्थात् वह सबकुछ होता है जो नहीं होना चाहिए और वह कहीं नहीं होता जिससे गाँव की मूल पहचान थी। रचनाकार खिन्नभाव से कहता है – ''आज गाँवों में घर–घर नौकरी पेशेवाले लोग हो गये हैं। उन नौकरियों के रास्ते गाँव में शहर धकिया पर घुस आया है और चाय–पानी कर रहा है।'' [९]

डॉ० विवेकी राय के 'लोकऋण' उपन्यास में भी सम्यता बनाम संस्कृति की लड़ाई का बड़ा ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रांकन हुआ हैं । इसी तरह 'सोनामाटी' में सांस्कृतिक, 'समर शेष है' में सामाजिक , 'मंगल भवन', 'अमंगल हारी' एवं 'पुरूष पुराण' में पारिवारिक मूल्यों के बिखराव एवं कलुषता के चलते हो रहे पतन को दिखाने का प्रयास किया गया है। नगर बनाम गाँव के प्रतिद्वंदितापूर्ण संबंधों के चलते आज ग्राम्य–संस्कार मृतप्राय होते जा रहे हैं। लेखक का विचार है कि ''मामला संस्कृति और सभ्यता के टकराव का है। संस्कृति अपढ़, गँवार और गरीबों के टोले में अभी अटूट रूप में विराज रही है और सभ्य समृद्ध गाँव में टूट गयी। ऐसे गाँवों ने नगरों से प्रभावित होकर उनकी तर्कशील बुराइयों को तो ओढ़ लिया है मगर उनकी अच्छाइयाँ उनमें नहीं आयी।'' [१०] नगरीय मानसिकता ने न केवल गाँव के प्राकृतिक जीवन को तहस–नहस किया, अपितु उसकी नैतिकता पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया। क्योंकि, नगरीय सभ्यता के कुप्रभावस्वरूप उनके सारे

दोष गाँव के अंदर आ गये और गाँव के जो गुण थे, वे अवगुण में बदल गये या यो कहें लगने लगे।

रचनाकार का मानना है कि इन तमाम जटिलताओं के चलते गाँव अपनी अस्मिता खोते जा रहे हैं। नैतिक अवमूल्यन, स्वस्थ संबंधों का ह्रास, आस्था का संकट, धर्मभीरूता का लोप, हीन मनोवृत्ति में वृद्धि, दिशाहीन युवा पीढ़ी, फैशन एवं आधुनिकता का अतिआकर्षण, रूग्न परम्पराएँ, मिथ्या दंभ, दहेज जैसे कई संदर्भ बूढ़ा गाँव (नमानि ग्रामम्) प्रस्तुत करता है, जिसके परिणामस्वरूप गाँवों का पतन हो रहा है।'' [११] ''पहले मानव महान माना जाता था, क्योंकि उसके पास संस्कृति की धरोहर थी।'' [१२] जिसके अभाव में वह मानव न होकर दानव हो जाया करता है। वस्तुत: ''संस्कृति ही मानव की श्रेष्ठतम् धरोहर है, जिसकी सहायता से मानव पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढता जा रहा हैं। प्रगति की ओर उन्मुख होता जा रहा है।''[१३] अर्थात '' संस्कृति में वह सम्पूर्ण जटिलता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आधार, कानून प्रथा और ऐसी ही अन्य उन क्षमताओं एवं आदर्शो का समावेश होता है जिन्हें मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।'' [१४]

इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि भारत की ग्राम–संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है और नगरीय सभ्यता के धक्के से ग्राम संस्कृति के बिखरने से भारतीय संस्कृति बिखर रही है। रचनाकार डॉ० विवेकी राय का मत है कि ''अन्तरवृत्ति और ब्राह्य संगठन दोंनो ही दृष्टि से ग्राम जीवन का यह पक्ष सम्प्रति अत्यन्त ध्वस्त और मात्र रूढ़ियों के समुच्चय के रूप में अवशिष्ट रह गया है। उसमें आदर्शो का समष्टि रूप खो गया है। उनकी स्पष्ट धारणा है कि ''यदि संस्कृति का स्रोत ग्राम–जीवन है तो सभ्यता का स्रोत नगर जीवन है। विज्ञान के अकूत वैभव और वरदान से गरिमाशाली प्रसारशील नगर गाँवों पर द्रुतगति से छाते जा रहे हैं और उसकी चपेट में ग्राम टूटते जा रहे हैं। सांस्कृतिक अवमूल्यंन के नये आयाम गाँवों के नगरीकरण के परिप्रेक्ष्य में उद्घाटित हो रहे हैं।''[१५] कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आज के इस बदलते परिवेश में पूरे आजाद भारत का शहरीकरण हो रहा है। फलत: हमारी पहचान निरंतर धूमिल होती जा रही है और कृत्रिमता का भाव क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है। रचनाकार विवेकी राय जी का समस्त उपन्यास संसार और विशेषत: 'नमामि ग्रामम्' ग्राम–संस्कृति बनाम नगर सभ्यता का सूक्ष्म एवं व्यापक विश्लेषण है, जो हमें नये सिरे से विमर्श करने को विवश करता है।

संदर्भ सूची

स्वातंत्र्योतर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन – *डॉ० विवेकी राय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, १९७४, पृ०–३१७*

हिंदी कहानी : समीक्षा और संदर्भ १९८६, पृ० सं०–८१ – *डॉ० विवेकी राय, अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद,*

बबूल – *डॉ० विवेकी राय, अनुराग प्रकाशन,*

चौक वाराणसी, संस्करण– २००१, पृ०–१२०
संगम का साहित्यिक सिद्ध – डॉ० विवेकी राय, स्वामी सहजानंद सरस्वती
स्मृतिकेन्द्र , बड़ी बाग, गाजीपुर, प्रथम संस्करण
२००२, पृ०–२६
मंगल भवन – डॉ० विवेकी राय, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण– १९९४, पृ०– ४९५
नमामि ग्रामम् – डॉ० विवेकी राय, विद्या बिहार, नई दिल्ली,
संस्करण– १९९७, पृ०–७४
वही – पृ०– ९०
वही – पृ०–१४६
अमंगलहारी – डॉ० विवेकी राय, ज्ञान गंगा, दिल्ली
संस्करण– २०००, पृ०– २३
सोनामाटी – डॉ० विवेकी राय, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण– १९९४, पृ०– ३८४
अभिनव प्रसंगवश – सं० डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ, वर्ष–८ अंक–१
पृ०– १२७
कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु की युग चेतना – डॉ० रणविजय सिंह, पृ०–९४
हिंदी उपन्यासों में आंचलिकता विवेकी
राय के संदर्भ में – डॉ० जनार्दन राय, पृ०– १५२
Primitive Culture - Tylor , Page -01
स्वातंत्र्योतर हिंदी कथा साहित्य
और ग्राम जीवन – डॉ० विवेकी राय, पृ०– २३५